पीएच.डी. शोध प्रबन्ध – 1

बाल पक्षाघात एक आयुर्वेदीय निदान चिकित्सात्मक अध्ययन

अध्येता : डा. लोकनाथ शर्मा

निर्देशक : वैद्य वासुदेव शास्त्री

1983 : 247

बाल पक्षाघात रोग के प्रतिषेधात्मक प्रयास सफल रहे हैं, किन्तु–रोग ग्रस्त होने पर निश्चित उपचार की अनुपलब्धता का शोध करना ही महानिबन्ध का उद्देश्य है।

शोध कार्य हेतु बाल पक्षाघात के सहकारण ज्ञात करना, विभिन्न लक्षण समूहों का ज्ञान, साध्यासाध्य की अवस्थाओं का ज्ञान तथा आकस्मिक चिकित्सा का ज्ञान अधीत शोध क्षेत्र है।

रोगेतिवृत्त, नैदानिक अध्ययन, लाक्षणिक अध्ययन, मांसपेशी संज्ञा चेष्टा एवं क्रियाओं का परिज्ञान ही शोध हेतु रोगी चयन का आधार रहा।

प्रायोगिक कर्म से पूर्व अध्येता ने वर्ष 1975 से 1980 तक 4028 रोगियों का सर्वेक्षणात्मक अध्ययन किया है। प्रायोगिक कार्य हेतु 400 रोगी लिये गये। जिन्हें अर्द्धांग वातारि रस, मधुमालिनी बसन्त तथा अश्वगंधा क्षीरपाक औषध रूप में आभ्यन्तर प्रयोगार्थ तथा स्नेहन अभ्यंग, शिग्रु वाष्प स्वेदन तथा विविध व्यायाम प्रयुक्त किये गये।

400 रोगियों में उरु व जंघा शोष 74 प्रतिशत, जानुक्रिया हानि 74 प्रतिशत, जानु विरूपता 78 प्रतिशत, भारोद्वहन गति असामर्थ्य 95 प्रतिशत, संज्ञा शून्यता 57.5 प्रतिशत, पार्श्व परिवर्तन क्षमता 39 प्रतिशत आदि मुख्य लक्षण निर्दिष्ट प्रतिशत में उपलब्ध हुये।

लाभालाभ की निर्दिष्ट तालिका के अनुसार व्याधि की तरुणावस्था में 70 प्रतिशत रोगी लाभान्वित, 17.3 प्रतिशत आंशिक लाभान्वित, 10 प्रतिशत रोगियों को लाभ नहीं हुआ। जीर्णावस्था में 11.1 प्रतिशत रोगी लाभान्वित, 31.1 प्रतिशत आंशिक लाभान्वित तथा 56.4 प्रतिशत रोगियों को लाभ नहीं हुआ।

घात से प्रभावित मांसपेशी की विनष्ट संकोच प्रसार क्रियाओं को पुनः जीवित करते हुये नियमित करने का प्रयास आवश्यक है।

घात से प्रभावित अंगों को प्राकृतावस्था में रखना चाहिये। अंगों की पुनर्स्थापना, अवस्थानुसार चिकित्सा निर्धारण करना चाहिये।

तरुणावस्था में सामज लक्षणों के शमनार्थ लंघन, पाचन, रूक्षण, स्वेदन व ऊष्ण द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिये।

जीर्ण रोगियों में वृंहण व वातशामक उपचार करने चाहिये।

पीएच.डी. शोध प्रबन्ध – 2

हृद्रोग चिकित्सा

अध्येता	:	वैद्य रमेश कुमार शर्मा
निर्देशक	:	वैद्य प्रभुदत्त शास्त्री
1984	:	509

आयुर्वेदीय निदान एवं चिकित्सा दोनों में ही हृद्य रोगों के विस्तृत ज्ञान के अभाव की पूर्ति करना ही महानिबन्ध का उद्देश्य है।

अद्यावधि (वैदिक काल से अध्ययन पूर्व तक) सम्पन्न हृद्रोग सम्बन्धी कार्य का सैद्धान्तिक व संकलनात्मक कोष अध्येता ने बनाया है।

आयुर्वेद वाङ्मय में हृदय का स्वरूपात्मक, संरचनात्मक, पर्यायात्मक, भौतिक, भ्रौणीय विकास, ओजोसंबंध, दोषस्थिति, मातृजादि षड्भावों का प्रभाव, पेशी महत्ता, संवहन तंत्र, रसरक्त संवहन दाब, आयतन, क्रिया प्रवर्तन, तन्त्रिकाओं

का योगदान, रक्तदाब, निदानात्मक, लक्षणात्मक, विकृत्यात्मक, अरिष्टात्मक, परीक्षणात्मक, साध्यासाध्यता, चिकित्सात्मक, पथ्यात्मक एवं विकृति मूलात्मक हृदय संबंधी ज्ञान का उपरोक्त वर्गों में वर्गीकृत कर अद्यावधि संकलन किया गया है।

पीएच.डी. शोध प्रबन्ध – 3

आयुर्वेद शिक्षा एवं चिकित्सा में आयुर्वेद मार्तण्ड स्वामी लक्ष्मीराम जी का योगदान

अध्येता : वैद्य बनवारी लाल गौड़

निर्देशक : डा. वेदप्रकाश शर्मा

1985 : 3+4+3+291+3

स्वामी लक्ष्मीरामजी राजस्थान में आयुर्वेद प्रगति के सूत्रधार व उन्नायक रहे हैं, उनके जीवन वृत्तान्त पर यह इतिहास परक शोध प्रबन्ध इस उद्देश्य से लिया गया है कि जयपुर में आयुर्वेद शिक्षा की परिस्थितियां, शिक्षण की तत्कालीन व्यवस्था, चिकित्सा का सरलतम मार्ग एवं प्रक्रिया का ज्ञान आधुनिक आयुर्वेदज्ञों को आयुर्वेदोन्नति में सहायक होगा, ऐसा अध्येता का मन्तव्य है।

महानिबन्ध को 7 अध्यायों में विभक्त किया गया है, जिनमें स्वामी लक्ष्मीरामजी के जन्म, शिक्षा, दीक्षा, सम्पर्क, राज्यसेवा, समाजसेवा एवं संस्थापित संस्थायें, सम्प्रदाय सेवा, आयुर्वेदीय संगठनों की स्थापना, शिष्य सम्पदा, निदान पद्धति, प्रायोगिक अध्यापन और चिकित्सा वैशिष्ट्य को विस्तार से प्रमाणों के साथ दिग्दर्शित किया गया है।

साथ ही वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में स्वामीजी की उक्त गतिविधियों का उपयोग लेकर किस प्रकार शिक्षण, चिकित्सा एवं संगठनों में गुणात्मक सुधार किया जा सकता है, अध्येता ने विस्तार से वर्णित किया है।

स्वामीजी के योगदान का आधुनिक आयुर्वेदज्ञों द्वारा मूल्यांकन एवं निर्णयोपरान्त उनकी पोषित संस्थाओं के स्वरूप का विवेचन भी अध्येता ने किया है।

पीएच.डी. शोध प्रबन्ध – 4

अर्शोरोग में दुर्नामान्तक वटी एवं क्षार प्रयोग की कार्मुकता

अध्येता : डा. श्यामसुन्दर शर्मा

निर्देशक : प्रो. रामप्रकाश स्वामी

1986 : 263

वातानुलोमक व अग्निबलवर्द्धक होने के कारण दुर्नामान्तक वटी (सि.भै.म.मा.) का पूर्व में कहीं प्रायोगिक अनुसंधान नहीं हुआ तथा उद्देश्य पूर्ति हेतु शल्य कर्म के रूप में क्षारसूत्र का प्रयोग अल्पव्यय साध्य, अल्पकष्ट कर, अल्पसाधन से साध्य तथा छोटे से छोटे स्थान में भी कार्मुक होने से अर्शो रोग की सम्पूर्ण चिकित्सा के रूप में दोनों प्रयोगों को शोध हेतु चयनित किया गया।

रोगेतिवृत्त व प्रत्यक्ष परीक्षा के आधार पर 86 रोगियों का चयन कर 750–750 mg. की 2–2 गोली दिन में 3 बार शीतल जल से 1 सप्ताह तक कुल 42 गोली दी गयी।

क्षार सूत्र हेतु 50 रोगियों (जिनमें 3 पित्तज, 2 वातज व 45 रक्तजार्श के थे) का चयन किया गया।

दुर्नामान्तक वटी के प्रयोग से II Stage के 1–2 अर्शांकुर वाले 40 वर्ष तक के रोगियों में 1–2 वर्ष तक पीड़ित 73 प्रतिशत रोगियों में रक्तस्त्राव 2–3 दिन में बन्द हुआ। जीर्ण रोगियों में 4–6 दिन तक शोणित स्थापन हुआ। क्षार सूत्र के प्रयोग से 74 प्रतिशत रोगियों के अर्श 2 से 4 दिन के बीच में कट गये, वृद्धावस्था के रोगियों में अर्शांकुर शीघ्र कटे, 26 प्रतिशत रोगियों में 5 से 7 दिनों के बीच अर्शांकुर पतन हुआ।

पीएच.डी. शोध प्रबन्ध – 5

अन्नद्रवशूल एवं परिणाम शूल रोग में संशोधन कर्म का प्रायोगिक अध्ययन

अध्येता : डा. राधेश्याम शर्मा

निर्देशक : वैद्य वासुदेव शास्त्री

1988 : 270

अन्नद्रव एवं परिणाम शूल रोग नानाविध पद्धतियों से दुष्चिकित्स्य एवं उपद्रवशील रहे हैं।

कृच्छ्र प्रयोक्तव्य होने से शोधन चिकित्सा लुप्तप्राय है। शोधन चिकित्सा के पुनरुज्जीवन हेतु प्रत्यक्ष कर्माभ्यास पूर्वक शोध ही महानिबन्ध का उद्देश्य है।

आतुरवृत्त पत्रक ही रोगी चयन का आधार मानते हुए 30 अन्तरंग रोगियों को स्नेहन, स्वेदन पूर्वक वमन कर्म का प्रयोग किया गया। साथ में अविपत्तिकर चूर्ण का कदाचित् प्रयोग 3–3 ग्राम की मात्रा में 3 बार किया गया। पथ्य रूप में दूध व दलिया तथा अग्निबलानुसार संसर्जन कर्म किया गया।

चरक विमान के अनुसार धातुसाम्य लक्षणों को लाभ का आधार माना गया, पूर्ण लाभ 43.33 प्रतिशत रोगियों में, 36.67 प्रतिशत में मध्यम लाभ व 20 प्रतिशत रोगियों को लाभ नहीं रहा।

पीएच.डी. शोध प्रबन्ध – 6

आयुर्वेद परिगृहीतानां दार्शनिक वादानां चिकित्सायामुपयोगः

अध्येता : वैद्य ओम् प्रकाश उपाध्यायः

निर्देशक : डा. वेदप्रकाशः शर्मा

1988 : 260

''आयुर्वेद परिगृहीतानां दार्शनिक वादानां चिकित्सायामुपयोगः'' इति विषयमधिकृत्य प्रबन्धेऽस्मिन् पंचसूल्लासेसु दार्शनिकोक्तानां वादानां आयुर्वेद साहित्ये कथं कुत्र चोपयोगः कृतः वर्तते, कर्तुं वा शक्यते ? इति प्रतिपादितम् ।

सत्कार्यारम्भ–परमाणु–विवर्तादि–दार्शनिक वादाः आयुर्वेदीयानां त्रिदोष–पंचमहा भूतादि सिद्धान्तानां मूले वर्तन्ते । चिकित्सात्मके कर्मणि विविधायुर्वेद सिद्धान्त सम्पुष्टैः साधनैः विकृतिमापद्यमानानां त्रिदोषाणां पंचमहाभूतानां वा साम्यसम्पादनं मुख्य कर्म । अस्मिन् कर्मणि दार्शनिकवादान् प्रविचार्य अपि रोग सम्प्राप्तिभंगः कर्तुं शक्यते, इत्येव प्रबन्धस्य मुख्य विषयः ।

सम्यक् ज्ञानापादनार्थम् प्रथमोल्लासे वादशब्दस्य व्याकरण शास्त्रोपदिष्ट शब्दप्रत्ययात्मिका निरूक्तिः कृता निर्वचनं च कृतम् । निर्वचन परिभाषानुसारेण च वादशब्दः कथावाची स्वीकृतो भवति ।

वादस्य प्रयोजनमभिधाय द्वितीये उल्लासे प्राच्य प्रतीच्यानुमतः वादाः विवेचिताः संक्षेपेण वादानां परिचयः तत्तद् दर्शनानुसारेण जातः । षडास्तिक दर्शनानां वादाः यथा– सांख्यस्य सत्कार्यवादः, परिणामवादः, न्यायस्य परमाणुवादः, आरम्भवादः तथा च ईश्वरवादः, वैशेषिकस्य परमाणुवादः तथा सामान्य विशेषवादः, योगदर्शनस्य अष्टांगयोगवादः तथा मोक्षवादः, मीमांसादर्शनस्य च विवर्तवादः । नास्तिक दर्शनेषु जैनदर्शनस्य स्याद्वादः, सप्तभंगीनयः, अनैकान्तवादः, बौद्धदर्शनस्य क्षणिकवादः, स्वभावोपरमवादः, लोकायत दर्शनस्य स्वभाववादः । इत्थं प्रमुखाः एव वादाः वर्णिताः संक्षिप्तोल्लिखितानामेव दार्शनिक वादानां तृतीयोल्लासे आयुर्वेदीय मौलिक सिद्धान्तेषु

अन्वेषणं विहित । अस्मिन् प्रबन्धे नामतः निर्दिष्टाः वादाः तथा च विषयवस्तु द्वारा उक्ता वादाः इति द्विविधाः एव वादाः संगृहीताः तृतीयोल्लासे एव पूर्वं पंचमहाभूत–त्रिदोषधातु रस–वीर्यविपाकादयः आयुर्वेदीयाः सिद्धान्ताः प्रमुखाः व्याख्याताः ।

वादानां चिकित्सायामुपयोगः नास्तिक प्रस्थानीयानां आस्तिक प्रस्थानीयानां च वादानां विषयाः चिकित्सोपक्रमेषु संक्रान्ताः एवेति चतुर्थोल्लासे ते निर्दिष्टाः ।

आधुनिकी चिकित्सापद्धतिः वा भवेत्, आयुर्वेदीया वा पद्धति भवेत्, सर्वत्र कार्यकारणवादः व्याप्तः परिलक्ष्यते । अतः मूलं विचार्य कृत्वा मौलिकी चिकित्सा एवं परमार्थकरी भवितुमर्हति । वादाः सर्वसिद्धान्तातिरूढ़ाः सन्ति । सर्वा चिकित्सा वादानुमोदिताः एवेति ।

पीएच.डी. शोध प्रबन्ध – 7

रूद्रयामल–पारदकल्प (समीक्षात्मक अध्ययन)

अध्येता	:	डा. लक्ष्मीकान्त द्विवेदी
निर्देशक	:	प्रो. मदनलाल शर्मा
1989	:	209+13+109+7+3+4+1

कौलाचार सम्मत भैरव स्रोत के तन्त्रों की नामावलि में, रूद्रयामल, यामलष्टक में प्रथम है। रूद्रयामल का चिकित्सापरक एवं रसशास्त्रीय प्रकरण अति विशाल है। मध्यकालीन आचार्यों ने इसे समादृत किया है, किन्तु–परवर्ती एवं वर्तमान समय में यह परम्परा लुप्त प्रायः है। रूद्रयामल पारदकल्प अब तक अप्रकाशित पाण्डुलिपि है, रूद्रयामलीय रसशास्त्रीय प्रकीर्ण साहित्य को संकलित करते हुए पारदकल्प की समीक्षा को अनिवार्य संशोधनों के साथ मूल रूप में गवेषणात्मक अध्ययन एवं प्रकाशन ही महानिबन्ध का उद्देश्य है।

संप्रति रूद्रयामल तन्त्रान्तर्गत सप्त धातु निरूपण एवं रसार्णव कल्प प्रकाशित है, इसके अतिरिक्त 19 कल्पों की पाण्डुलिपियां ग्रन्थालयों में हैं। इनके अध्ययन से कुल

32 कल्पों की सूचना मिलती है। जल सिद्धि कल्प की पाण्डुलिपि में उल्लेख है कि यह रूद्रयामल का 84वां पटल है। पारदकल्प की 5 पाण्डुलिपियों के आधार पर पाठ निर्धारण पुरस्सर संशोधित तथा परिवर्द्धित पाण्डुलिपि तैयार की गयी है। इनका समीक्षात्मक अध्ययन 25 प्रकरणों में संपादित किया गया है।

तांत्रिक दिग्दर्शन के उपरान्त यामल एवं रूद्रयामल का दिग्दर्शन करते हुए, रूद्रयामलीय रस वाङ्मय को प्रस्तुत करते हुए इसके पारद कल्प का समीक्षात्मक अध्ययन एवं वैशिष्ट्य का प्रतिपादन 38 रस शास्त्रीय ग्रन्थों को शास्त्र ज्योति मानकर किया गया है।

रसेश्वरदर्शन परिनिष्ठति के पूर्व से ही रस विद्या का उपयोग ''श्री विद्या'' के उपासक ईसा पूर्व सहस्त्रों वर्षों से करते आये हैं (ईसा पूर्व 5वीं शताब्दी)।

रूद्रयामल का पारदकल्प जो कि वस्तुतः कंकालाध्याय है इसके प्रकाशित होने से कंकालाध्याय वार्तिक (रसाध्याय) को समझने में सुविधा होगी तथा रसाध्याय (कंकालाध्याय) वार्तिक के संशययोग्य स्थलों से संदिग्धता निराकरण होगा जिससे रसाध्याय को व्यवहार में लाना सरल हो जाएगा।

पूर्ण रूद्रयामलीय रस वाङ्मय का प्रतिसंस्कार, लुप्त हुए कल्प एवं पटलों के अनुसंधान के उपरान्त अपेक्षित है।

कौल सम्मत पारद संस्कारों का प्रचलित पारद संस्कारों से तुलनात्मक अध्ययन नव्य यन्त्रोपकरणों की सहायता से अष्ट संस्कार एवं अष्टादश संस्कार का मानकीकरण एवं गुणवत्ता नियन्त्रण अपेक्षित है। एतदर्थ उच्च स्तरीय प्रयोगशालाओं को आगे आना चाहिए।

मृतसंजीवन जैसे रस बन्धों का चिकित्सात्मक अनुसन्धान परक अध्ययन, राजीजारण के सम्बन्ध में, द्रुति विषय, जारण संस्कार एवं उसका निर्माणात्मक वैशिष्ट्य ही क्या ? ग्रन्थ का प्रत्येक प्रकरण शोध की अपेक्षा रखता है।